उपनिषद् तत्त्व

डॉ. रामदेव साहू
एसोसिएट प्रोफेसर
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

उपनिषद् वेद का ज्ञानकाण्ड है। इसमें वेदविद्या के चरम सिद्धान्त 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म, नेह नानास्ति किंचन' का प्रतिपादन विस्तारपूर्वक हुआ है। साधनचतुष्टयसम्पन्न जिज्ञासुश्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु के मुख से उपनिषद् तत्त्व का उपदेश सुन कर तार्किक युक्तियों से उस पर प्रगाढ मनन करते हुए गुरूपदिष्ट तत्त्व के अभ्यास से निदिध्यासनपूर्वक 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि का चिन्तन करते हुए निष्ठापूर्वक विज्ञानस्वरूप परब्रह्म की सत्ता में प्रवेश करता है एवं ब्रह्मरूपता को प्राप्त करता है–

''ब्रह्मविद् बह्मैव भवति''

जीव–ब्रह्मैक्य का प्रतिपादन उपनिषद तत्त्वोपदेश का सारभूत निष्कर्ष है। इसे सिद्धान्ततः स्थिर कर दिया गया है– 'जीवो ब्रह्मैव नापरः'। केवल जीव ही नहीं, जड पदार्थ भी ब्रह्म से अभिन्न हैं। अतः 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' ऐसा अन्ततः कहा गया है। ब्रह्म ही विज्ञान की पराकाष्ठा है। अतः 'विज्ञानं ब्रह्म' इस रूप में भी ब्रह्म की प्रतिपत्ति दर्शायी गयी है। ब्रह्मविज्ञान ही यथार्थ विज्ञान है, जिसको आत्मविज्ञान अथवा आन्तर विज्ञान भी कहा गया है। पदार्थ विज्ञान मनुष्य को अशान्ति प्रदान करता है, किन्तु उपनिषद् तत्त्वमीमांसारूप आन्तर विज्ञान अथवा ब्रह्मविज्ञान ही मनुष्य को सच्ची शान्ति प्रदान करता है, अतः कहा गया है।

'तरति शोकमात्मवित्।','तत्र को मोह क : शोक एकत्वमनुपश्यतः।' इत्यादि।

उपनिषद् शब्द का क्या अर्थ है?

उपनिषद् का अर्थ है– अध्यात्मविद्या ।'उप' तथा 'नि' उपसर्गपूर्वक सद् धातु मे 'क्विप्' प्रत्यय जोड़ने पर उपनिषद् शब्द निष्पन्न होता है। इसका तात्पर्य है ,कि जिसके परिशीलन से संसार की कारणभूता अविद्या का नाश हो जाता है, गर्भवासादि दुःखों से सर्वथा छुटकारा मिल जाता है तथा परब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है, उसी का नाम उपनिषद् है।

उपनिषदों में आद्यन्त मंगलपाठ

उपनिषद् प्राणी का सर्वथा मंगलकारक है। सभी उपनिषदों में परम्परया आदि में एवं अन्त में मंगलपाठ किया गया है। उपनिषद् के अध्येता के लिए भी अध्ययन में आद्यन्त मंगलपाठ अनिवार्य है। मंगल का लक्षण है- **'विघ्नविनाशकत्वे सति समाप्तिफलकत्वं मंगलत्वम्।'** हमारा उपनिषत्तच्चिन्तन निरन्तर निर्विघ्न चलता रहे, अत: मंगलपाठ की अनिवार्यता प्रतिपादित की गयी है।

दैवी-आसुरी सम्पद् एवं मंगलरहस्य

इस लोक में दैवी एवं आसुरी के भेद से दो प्रकार की भूतसृष्टि होती है:- दैवी भूतसृष्टि एवं आसुरी भूतसृष्टि, दोनों में गुणों एवं कर्मों के बन्ध स्वभावसिद्ध होते हैं तथा दोनों में विरुद्धत्व के कारण भिन्नता दिखायी देती है। श्रीमद्भगवदगीता के अनुसार अभय, सत्त्वशुद्ध ज्ञानयोग में स्थिति, दान, दम, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, निन्दा का अभाव, भूतों (प्राणियों) पर दया, अलोलुपता, लज्जा, चपलता का अभाव तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, अद्रोह, अतिमान का अभाव ये गुण दैवी भूतसृष्टि में स्वभावत: विद्यमान होते हैं , अत: दैवीसम्पत्ति के साथ जन्मे प्राणी में स्वभाविक रूप से इनकी प्रवृत्ति देखी जाती है।

इसी प्रकार दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, कठोरता एवं अज्ञान ये गुण आसुरी भूतसृष्टि में स्वभावत: विद्यमान होते हैं, अत: आसुरी सम्पत्ति के साथ जन्मे प्राणी में स्वाभाविक रूप से इसकी प्रवृत्ति देखी जाती है। आसुर स्वभाव के मनुष्य प्रवृत्ति तथा निवृत्ति को नहीं जानते ? अत: उनमें शौच सदाचार एवं सत्य नहीं होते, वे जगत् को असत्य आश्रयरहित ईश्वर के बिना केवल स्त्रीपुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ, अत: काम ही उसका हेतु है, ऐसा मानते हैं। मिथ्या दृष्टि का आश्रय लेने के कारण नष्टस्वभाव एवं अल्पबुद्धि वाले वे सबका अहित एवं क्रूर कर्म करने वाले होते हैं।

उपनिषत्तत्त्वज्ञान में दैवी सम्पद् वाले मनुष्य ही स्वभावत: प्रवृत्त होते हैं, किन्तु आसुरी सम्पद् वाले मनुष्य उनसे स्वभावत: विरोध के कारण विघ्नों के उत्पादक बन जाते हैं। अत: उपनिषत्तत्त्वज्ञान में प्रवृत्त दैवी सम्पद् वाले मनुष्यों को निर्विघ्न लक्ष्यप्राप्ति के उद्देश्य से मंगलपाठ करना अनिवार्य बतलाया गया है। इस मंगलपाठ से दैवी शक्ति का प्रभाव प्रसूत होता है तथा आसुरी शक्ति का प्रभाव निर्मूल हो जाता है।

मंगलभेद मीमांसा

मंगल तीन प्रकार के कहे गये हैं–

1 नमस्कारात्मक मंगल 2 आशीर्वादात्मक मंगल, एवं 3 वस्तुनिर्देशात्मक मंगल। इनमें नमस्कारात्मक मंगल मंगलकर्त्ता में दैवी शक्ति का संचार करता है, जिसके प्रभाव से आसुरी शक्ति न तो उस में प्रविष्ट हो सकती है और न ही उस पर प्रभावी हो सकती है। उपनिषदों में इस नमस्कारात्मक मंगल की प्रस्तुति निम्नानुसार हुई है–

'ओं पूर्णमद : पूर्ण पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः

आशीर्वादात्मक मंगल लक्ष्यपरक होता है। तत्त्वज्ञान में प्रवृत्त मनुष्य लक्ष्यमूलक कामना की अभिव्यक्ति कर उसकी पूर्णता का आशीर्वाद परब्रह्म से प्राप्त करता है। उपनिषदों में आशीर्वादात्मक मंगल की प्रस्तुति निम्नानुसार हुई है–

' ऊँ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता , मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासी अनेनाधीतेनाहोरात्रान्सन्दधाम्यमृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारम्। ऊँ शान्तिःशान्तिः शान्तिः।'

वस्तुनिर्देशात्मक मंगल स्मृत्यात्मक होता है। तत्त्वज्ञान में प्रवृत्त मनुष्य ब्रह्म की स्मृति को व्यक्त कर विघ्नविनाश की भावना का स्वाभाविक प्रस्तुतीकरण करता है। उपनिषदों में वस्तुनिर्देशात्मक मंगल की प्रस्तुति निम्नानुसार हुई है–

'ऊँ भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिररंगैस्तुष्टुवा्संस्तनूभिर्व्यशेम हि देवहितं यदायुः ॥'

आत्मविद्या एवं उपनिषद् शास्त्र

उपनिषद् शास्त्र की परमार्थता आत्मविद्या में निहित है, क्योंकि उपनिषद् जिस आत्मविद्या का उपदेश करते हैं, वह क्लेशों के पात्र सांसारिक प्राणियों को अकस्मात् प्राप्त होने वाले कष्टों का उन्मूलन करती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में अध्यात्म विद्या को भगवान् ने आत्मरूप कहा है- 'अध्यात्मविद्या विद्यानाम्। इस अध्यात्मविद्या का सार निम्नानुसार जाना जा सकता है-

ब्रह्म ही सब कुछ है। कोई भी पदार्थ ब्रह्म से भिन्न नहीं है। मनुष्य को जो भेद प्रतीति होती है, वह मिथ्या है। जैसे बिम्ब-प्रतिबिम्ब का भेद मिथ्या होता है, क्योंकि बिम्ब केअतिरिक्त प्रतिबिम्ब नामक कोई वस्तु होती ही नहीं, किन्तु उसकी प्रतीति होती है, ठीक वैसे ही ब्रह्मातिरिक्त कोई वस्तु नहीं है, किन्तु हमें प्रत्येक वस्तु में ब्रह्मभिन्नत्व की मिथ्या प्रतीति हो रही है। जीवात्मा परमात्मा का भेद भी मिथ्या है, आत्मा एक ही है तथा वही ब्रह्म है। जीवभेद से आत्मभेद मिथ्या प्रतीयमान है तथा जीव की अल्पज्ञता के कारण आत्मा उसके लिए अदृष्ट एवं अपरिज्ञात वस्तु है। उस आत्मा का ज्ञान अनुभूतिरूप में ही होता है, तथा वह अनुभूति तब होती है जब उत्पत्ति -विपरीत क्रम से सम्पूर्णप्रपञ्च का ब्रह्म में लय कर दिया जाये।

अर्थात् वागुपलक्षित बाह्येन्द्रियों का मन में, मन का अहंकार में, अहंकार का अस्मिता मात्र में, अस्मिता का शान्त एवं शुद्ध चिद्घन में लय करने पर विशुद्ध अद्वितीय ब्रह्म ही स्फुरित होने लगता है, अतः कहा है-

'यच्छेद् वाङ्मनसी प्राज्ञः तद् यच्छेज्ज्ञानमात्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति तद् यच्छेच्छान्त आत्मनि॥'

उपनिषदों में विज्ञान

विज्ञान शब्द के तात्पर्यार्थ को स्पष्ट करते हुए भगवान् भाष्यकार आदि शंकराचार्य लिखते हैं-

'विज्ञानं विज्ञप्तिः विज्ञानं तच्चानन्दं न विषयविज्ञानवद् दुःखानुविद्धं किं तर्हि प्रसन्नं शिवमतुलमनायासं नित्यतृप्तमेकरसमित्यर्थः।'

अर्थात विज्ञप्ति (तत्त्वबोध) का ही नाम विज्ञान है। वही आनन्द भी है। ब्रह्मविज्ञान पदार्थ विज्ञान की भाँति कष्टसाध्य नहीं है। फिर कैसा है ? बतलाते हैं- यह ब्रह्मविज्ञान आनन्दस्वरूप, कल्याणमय, आयासरहित, नित्य तृप्त करने वाला तथा एक रस है।

उपनिषदों में यह ब्रह्मविज्ञान ही मुख्य प्रतिपाद्य है , जो परम तत्त्व ब्रह्म का बोध कराने वाला होने से

यथार्थत: विज्ञान है तथा यह ऐसा विज्ञान है, जो एकमात्र आनन्द का स्रोत है। इसे योग की कसौटी पर परखा जा सकता है, जैसा कि श्रीमद्भगवदगीता में भी कहा है-

'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शिनः।।'

उपनिषद् वेद का अन्तिम भाग

उपनिषद् वेद वाङ्मय का अन्तिम सोपान है। इस अन्तिम सोपान में ज्ञान की चरम सीमा स्थापित हुई है। वेद के ही अंश रूप में उपनिषद् स्थापित रहे हैं। कुछ उपनिषद् ब्राह्मण ग्रंथों के अंगभूत हैं, कुछ आरण्य कों के अंगभूत हैं, कतिपय संहिता के अंगभूत हैं तथा कतिपय स्वतन्त्र भी हैं। वैदिक स्वाध्याय-परम्परा से विकसित चिन्तनधारा ने जिज्ञासुओं को ज्ञानपिपासु बनाया, अत: वे तत्त्वज्ञान की ओर अग्रसर हुए। उपनिषद् इसी तत्त्वज्ञान की प्रस्तुति रोचक ढंग से करते हैं तथा ज्ञान-विज्ञान के विविध प्रसंगों को सूक्ष्मता से समझाते हैं। वेद के अन्तिम भाग के रूप में प्रतिष्ठित होने से इन्हें ही वेदान्त भी कहा जाता है तथा इनकी चिन्तनधारा को वेदान्तदर्शन के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।

उपनिषदों का विषयक्रम

उपनिषद् का मुख्य विषय 'ब्रह्म' है तथा मुख्य प्रयोजन है- ब्रह्मज्ञान । ब्रह्म का स्वरूप, ब्रह्म का जगत्कारणत्व, ब्रह्म से सृष्टि, ब्रह्मात्मैक्यविज्ञान, जीव एवं आत्मा में अद्वैत, ब्रह्मसायुज्य उपनिषद् के प्रमुख विषय हैं।

प्राचीन दृष्टि

पुरातन आचार्यों के मत में उपनिषद् में ज्ञान की पराकाष्ठा उपस्थापित हुई है। वैदिक कर्मकाण्ड ज्ञानकाण्ड पर ही अवलम्बित है। कर्मकाण्ड का उद्देश्य भी ज्ञान का व्यावहारिक उपयोग है, किन्तु कर्मकाण्ड से आत्मज्ञान नहीं हो सकता। ब्रह्म या आत्मा की नित्यता की प्रतिपत्ति से कर्मकाण्ड का प्रयोजन अवश्य सिद्ध हो सकता है। तत्त्वज्ञान की दृष्टि से आत्मा के एकत्व का प्रतिपादन करना, भेद को औपाधिक बतलाना, जीव एवं आत्मा में भी वास्तविक भेद का अभाव बतलाना, आत्मा की अखण्ड चिदानन्द रसरूपता का अनुभव कराना आदि सभी तथ्य उपनिषद्ज्ञान के अङ्ग हैं।

विज्ञानदृष्टि

आधुनिक विज्ञानवादी चिन्तकों के मत में उपनिषद् वेद में निहित विज्ञान को ही ज्ञान के समानान्तर उसी प्रकार प्रतिपादित करते हैं, जिस प्रकार ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रन्थों में ज्ञान के साथ साथ विज्ञान को प्रतिपादित किया गया है। प्राकृत यज्ञवाद के निरूपण में विज्ञान ही आलोकित हुआ है। यह विज्ञान पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड दोनों से सम्बन्धित है तथा ब्रह्म दोनों का आधार होने से एकमात्र विज्ञानमय है। यही उसकी सर्वज्ञता को भी लक्षित करता है। इस प्रकार वेदोक्त वैज्ञानिक सत्य एवं दार्शनिक सत्य को उपनिषद् में व्यापक स्थान प्राप्त हुआ है।

क्या उपनिषद् वेद है ?

'वेद' शब्द का अर्थ है ज्ञान। वेदपुरुष के शिरोभाग को उपनिषद् कहा गया है। स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी के शब्दों में उप (व्यवधानरहित)नि (सम्पूर्ण) षद् (ज्ञान) ही उसके अवयवार्थ हैं। अर्थात् वेद में जो ज्ञान निहित है, वह ज्ञेय से अभिन्न एवं देश-काल व वस्तु के परिच्छेद से रहित पूर्ण ब्रह्म है। यही ज्ञान उपनिषद् में प्रतिपादित हुआ है। अत: वेद एवं उपनिषद् में तात्त्विक अन्तर नहीं है, किन्तु वेद के अपौरुषेय होने के कारण तथा उपनिषद के पौरुषेय होने से उपनिषद को वेद कहना उचित नहीं है। वेद ब्रह्म की वाणी है, जबकि उपनिषद् ऋषिवाणी के रूप में उपनिबद्ध हुए हैं। तात्त्विक दृष्टि से इसे ऋषियों का आत्मानुसन्धान या तत्त्वानुसन्धान कहा जा सकता है, जिसकी प्रक्रिया को अपना कर अपने अन्तरनुभवों से उन्होंने इस वेदज्ञान को व्याख्यायित किया है।

वेद या ज्ञान का अपौरुषेयत्व

वेद अथवा ज्ञान कभी पौरुषेय नहीं होता, क्योंकि-

- ज्ञान स्वत: प्रमाण होता है। प्रमाणों से ज्ञान की सिद्धि नहीं होती। प्रमाण ज्ञान पर आधारित होते हैं तथा उनसे पदार्थों एवं उनके क्रियाकलापों की सिद्धि हो सकती है।
- ज्ञान स्वयं प्रकाशित होता है। ज्ञान को प्रकाशित करने वाला न कोई कर्ता होता है और न ही करण (साधन)। किसी क्रिया-विशेष से भी ज्ञान का प्रकाशित होना अनिवार्य नहीं है।
- ज्ञान काल से परिच्छिन्न नहीं होता, जबकि मनुष्यकृत सभी कार्य, सभी क्रियाऐं काल से परिच्छिन्न होते हैं।

ज्ञान अनादि है। उसका न तो किसी काल-विशेष में अभाव था और न ही किसी काल विशेष में अभाव होगा।

- ज्ञान देश से भी परिच्छिन्न नहीं होता। मनुष्यकृत कार्यों एवं क्रियाओं के लिए स्थान-विशेष की अनिवार्यता देखी जाती है, किन्तु ज्ञान तो कहीं भी हो सकता है ,अत: ज्ञान मनुष्यकृत नहीं हो सकता।

- ज्ञान विषय से भी परिच्छिन्न नहीं होता अर्थात् जैसे पुरुष की इन्द्रियों के लिए पदार्थज्ञान के विषय एवं क्रियाएँ निश्चित हैं, वैसा ज्ञान के सन्दर्भ में कुछ भी निश्चित नहीं है। इन्द्रियातीत होने से ज्ञान अपौरुषेय ही है।

- ज्ञान ज्ञाता एवं ज्ञेय की अपेक्षा नहीं रखता, जबकि ज्ञाता ज्ञेय की एवं ज्ञेय ज्ञाता की अपेक्षा रखते हैं। ज्ञान निरपेक्ष है तथा वह ज्ञाता एवं ज्ञेय से भी पूर्व सिद्ध है , अत: उसे कैसे पौरुषेय माना जा सकता है।

- ज्ञान न तो उत्पन्न होता है और न ही नष्ट होता है। संसार में किसी भी पदार्थ की उत्पत्ति का कोई न कोई हेतु अवश्य होता है, किन्तु ज्ञान की उत्पत्ति का कोई हेतु नहीं दिखायी देता। इसी प्रकार उसके विनाश का भी कोई हेतु नहीं दिखायी देता , अत: ज्ञान अपौरुषेय है।

- ज्ञान न तो कभी परोक्ष होता है और न कभी अपरोक्ष। स्मृति ही परोक्ष या अपरोक्ष हो सकती है, किन्तु ज्ञान नहीं, क्योंकि वह यथार्थ अनुभव होता है। अनुभव की भी स्मृति ही परोक्ष या अपरोक्ष हो सकती है, अनुभव नहीं। परोक्ष एवं अपरोक्ष से भिन्न पदार्थ कभी भी पुरुषकृत नहीं हो सकता।

- ज्ञान का कभी बाध नहीं होता। ज्ञान अज्ञान का बाध कर देता है, किन्तु अज्ञान ज्ञान का बाध नहीं करता। लौकिक पदार्थज्ञान में बाधकत्व हो सकता है, किन्तु जो मूलत: ज्ञान है, वहाँ बाधकत्व के लिए कोई स्थान नहीं, क्योंकि वह लौकिकता की सीमा से परे है ,अत: अपौरुषेय है।

- ज्ञान अनिर्वचनीय होता है। उसे न तो मन ही बता सकता है और न वाणी ही। केवलपदार्थज्ञान में ही निर्वचनीयता होती है, क्योंकि वह इन्द्रियजन्य होता है। आत्मज्ञान इन्द्रियजन्य न होने से अनिर्वचनीय है तथा अपौरुषेय है।

- ज्ञान सदैव सद्रूप होता है। यहाँ तक कि अज्ञान में भी कुछ अंशों में ज्ञान निहित होता है। चिद्वृत्ति में गूढज्ञान अज्ञान को भासित कर देता है, किन्तु अज्ञान ज्ञान को भासित नहीं कर पाता, अत:अज्ञान असद्रूप होता है।

जो सदैव सद्रूप है सत्तामय है, वह कभी पौरुषेय नहीं हो सकता।

- ज्ञान न तो दृष्टि का विषय है, न ही सृष्टि का। ज्ञान केवल अनुभव का विषय है। अनुभव के लिए दृष्टि एवं सृष्टि की अपेक्षा लौकिक धरातल पर होती है, जो केवल पदार्थज्ञान से संबद्ध है। वस्तुतः ज्ञानानुभव हेतु न दृष्टि की अपेक्षा है, न सृष्टि की, क्योंकि ज्ञान अपौरुषेय है।

वैज्ञानिक वेदनिरुक्ति

वेद चरम ज्ञान है, जिसमें उत्कृष्ट कोटि का विज्ञान समाहित है। एक मात्र ब्रह्मरूप परम सत्ता की अनुभूति ज्ञान है तथा ब्रह्म की शक्ति से उत्पन्न ब्रह्माण्ड एवं पिण्डरूप पदार्थों का वैविध्यपूर्ण ज्ञान विज्ञान है–

'एक ज्ञानं ज्ञानम् विविधं ज्ञानं विज्ञानम्।'

सृष्टि के समग्र विज्ञान की कुञ्जी एक मात्र वेद है। वेदोक्त सिद्धान्त ही चरम सत्य हैं। हम भले ही प्रातिभासिक सत्ता के आधार पर किसी तथ्य को सत्य मान कर अपना सिद्धांत निर्धारित कर लें, किन्तु उसका यथार्थ वेद से ही ज्ञात हो सकता है और तभी उसे सही मायने में परखा जा सकता है।